www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-2* *Issue-6* *June 2025***

हिंदी साहित्य पर दर्शन का प्रभाव

डॉ0 भास्कर मिश्र

सहायक आचार्य, श्री अरविंद महाविद्यालय (सांध्य), मालवीय नगर, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सारांश

हिंदी साहित्य में दर्शरचनाओं में विशिष्टाद्वैतवाद, नाथपन्थी कवियों की रचनाओ में जैन दर्शन के द्वैतवादी तत्वमीमांसा का प्रभाव दृष्टिगोचर होना शुरू हो जाता है। हिंदी साहित्य के स्वर्ण युग पूर्वमध्ययुगीन साहित्य में द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और सूफी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। तुलसीदास के रामचरितमानस में वैदिक और वेदांत दर्शन के तत्व मिलते हैं। मध्ययुगीन रीतिकाल ने जीवन और सौंदर्य को दार्शनिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। इसके साथ ही आधुनिक साहित्यिक रचनाकारों की रचना प्रक्रिया में यथार्थवाद, गांधीवाद, समाजवाद, वेदान्तवाद एवं प्रकृतिवाद जैसे अनेक भारतीय दर्शन के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। हिंदी साहित्य में भारतीय दर्शन के प्रवेश ने कुछ मौलिक प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया है, जैसे– अस्तित्व का मूल आधार क्या है? यथार्थ क्या है? पदार्थ, जीवन और आत्मा की प्रकृति क्या है? क्या आत्मा का अस्तित्व होता है? इसके साथ ही, इन सब बातों के उद्देश्य पर भी विचार किया गया है।

मूल शब्द– भारतीय दर्शन, हिंदी साहित्य, भक्तिकाल, तुलसीदास, अद्वैतवाद।

प्रस्तावना

दर्शन शब्द का मूल शब्द 'दृश' है यानी देखना। इस सन्दर्भ में, दर्शन का अर्थ है, सत्य या दर्शन को देखना अथवा उसकी कल्पना करना। भारतीय दर्शन विविधातापूर्ण है। इसकी महानता का आधार देश और काल दोनों की दीर्घता है। हिंदी साहित्य में दर्शन का प्रभाव गहरा और व्यापक रहा है। साहित्य में अनेक कृतियों का आधार दार्शनिक चिंतन पर टिका हुआ है। ये दर्शन साहित्य को भी गहनता प्रदान करते हैं, जिससे मानवीय अस्तित्व, नैतिकता और सत्य की खोज को नए आयाम मिलते हैं। किसी साहित्य के आरंभ की पहचान वहाँ की जा सकती है जहाँ वह धार्मिक कर्म–काण्ड और रहस्य–भावना से क्रमशः उन्मुक्त हो रहा है। इस दृष्टि से हिंदी में सिद्धों–नाथों (९–१२ शती ई०) से लेकर कबीरदास तक यह प्रक्रिया देखी जा सकती। हिंदी साहित्य में सिद्धों–नाथों की गुह्य बानियों में इस प्रक्रिया का आरंभ होता है। भाषा और साहित्य का आरंभिक रूप कैसे एक–साथ प्रवर्तित होता है, यह देखना अपने में बड़ा रोचक है। यही कारण है कि नाथ–सिद्धों की बानियों में भारतीय दर्शन और साहित्य एक दूसरे में घुले–मिले दिखाई देते हैं।

वास्तव में ८वीं शताब्दी के लगभग सिद्धों का अस्तित्व सामने आया तथा सिद्ध संप्रदाय का जन्म हुआ। यही से अपभ्रंस साहित्य के प्रमुख पुरुस्कर्ताओं में सिद्ध साधक उल्लेखनीय होते हैं। इनके लिए लौकिक जीवन बंधन था, अज्ञान तथा माया जाल था। इन साधकों की साधना का प्रमुख लक्ष्य यही था कि वे इस लौकिक जीवन से मुक्त हों तथा इसी लौकिक जीवन से दिव्य और आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण करें। ये सभी उलटे रूपक बांधकर, कभी चमत्कार पूर्ण प्रतीक योजना कर लोगों में यह भाव पैदा करते थे कि इस साधना का रस अद्वितीय है, जिसे न गुरू बता सकता है और न शिष्य सुन सकता है, इसे तो चखने वाला ही जान सकता है। प्रमुख सिद्ध सरहपा के काव्य में इस दर्शन की झलक स्थान–स्थान पर मिलती है। इसके अंतर्गत गुरु का महत्व, देह की स्थिति, चित् का महत्व, जगत की स्थिति, निर्वाण प्राप्ति, शून्य की व्यापकता, आदि भारतीय दार्शनिक तत्व मुख्य रूप

से उल्लेखनीय हैं। बौद्धों की महायान शाखा ने 'शून्यवाद' को दार्शनिक सिद्धांत के रूप में अंगीकृत किया है। इसके अनुसार संसार को शून्य और उसके सब पदार्थों को सत्ताहीन माना जाता है।

अपनी रचनाओ में सरहपा चित्त और जगत में अभेद मानते हैं। ये संपूर्ण जगत की स्थिति गंगा, सरस्वती, वाराणसी, प्रयाग, चाँद तथा सूर्य आदि सभी इस चित्त में ही स्वीकार करते हैं–

"एयु से सरसह सोवाणाह गड्गासागर।
वाराणसी पमागुएथु से चाँद दिवांअरु।।"

आत्मा भी शून्य है संसार शून्य है, घर–घर में यही शून्य है। शून्य की व्याख्या करते हुए ये एक स्थान पर कहते है–

"सुव्वणि अप्पा, सुष्ण जगु, घर–घरै एहु अक्खाण।
तरूअर–मूल ण जाणिआ सरहें हिं किअ बक्खाण।।

नौवीं और दसवीं शताब्दी में नेपाल कि तराइयों में 'शैव' और 'बौद्ध' सम्प्रदायों के सम्मिश्रण से 'नाथपन्थी' योगियों का एक सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ। भारत के मध्यकालीन धर्म–सम्प्रदायों में नाथ–सम्प्रदाय का गौरवपूर्ण स्थान है। इस नाथ सम्प्रदाय का दार्शनिक सरोकार शैव दर्शन से सम्बद्ध है, अभी तक साहित्यिक रचनाओं में दर्शन और प्रेम का स्वरूप अधिक सामाजिक था, परन्तु नाथों के योग का स्वरुप अधिक व्यक्तिगत रूप धारण करके साहित्यिक कृतियों में सामने आता है। गोरखनाथ ने योग से शैव प्रत्याभिज्ञा दर्शन के अनुसार जिस कायायोग को सुव्यवस्थित किया इसके ही परिणाम से पिण्ड में ब्रह्मण्ड आ गया–

"जोई जोई पिंडे सोई ब्रह्मांडे"

विद्वानों ने गोरक्षनाथ के अनेक ग्रन्थों का वर्णन किया है। हजारीप्रसादजी ने अपनी पुस्तक में प्रायः उन सभी स्रोतों को देख डाला है। गोरक्षनाथ की रचनाओं के अंतर्गत हठयोग के विषय में विचार करते समय हम निम्नलिखित तथ्यों पर पहुँचते हैं कि उनको पद्म, चक्र, नाड़ीज्ञान, मातृकाओं तथा कुण्डलिनी ज्ञान और अष्टांग योग की एक बहुत बड़ी धरोहर मिली थी। अमरौघ शासन, हठयोग प्रदीपिका, शिवसंहिता, घेरण्ड संहिता, गोरक्ष पद्धति, सिद्धसिद्धान्त संग्रह तथा गोरक्षसिद्धान्त संग्रह आदि साहित्यिक कृतियों में 'द्वैताद्वैतवादी' सिद्धांत दृष्टिगत होते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– 'मुक्ति क्या है? मुक्ति वस्तुतः नाथस्वरूप में अवस्थान है। इसीलिए 'गोरक्ष–उपनिषद' में कहा गया है अद्वैत के ऊपर सदानन्द देवता है अर्थात अद्वैतभाव ही चरम नहीं है, सदानन्द वाली अवस्था उसके ऊपर है।"

जैन दर्शन का हिन्दी साहित्य पर व्यापक प्रभाव रहा है। अहिंसा, अनेकांतवाद और अपरिग्रह के सिद्धांत हिन्दी साहित्य में विभिन्न रूपों में देखने को मिलते हैं। पद्मनंद द्विवेदी और हरिभद्र सूरि जैसे लेखकों की रचनाएँ जैन–दर्शन से प्रेरित हैं। जैन मुनियों द्वारा लिखे गए चरित्रों का हिन्दी साहित्य में अनुवाद हुआ है, जिससे जैन–दर्शन साहित्य का अभिन्न अंग बन गया है। जैन धर्म के अंतर्गत प्रमुख दार्शनिक तत्व सम्यक दृष्टि, श्रावक और साधु की भूमिकाओं के रूम में विद्यमान हैं। जैन कवियों ने आचार, रास, पाश, आदि विभिन्न शैलियों में साहित्य लिखा है, लेकिन जैन साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप श्रासश ग्रन्थ माने जाते है। हिन्दी में इस परम्परा का प्रवर्तन जैन साधु शालिभद्र सूरि द्वारा लिखित श्भरतेश्वर बाहुबली रास' से माना जाता है। रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य के विकास में जैन साधकों के योगदान को स्वीकार करते हुए लिखते हैं, ष्वास्तव में हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति और विकास में जैन धर्म का बहुत हाथ रहा है। अपभ्रंश का विकास हिन्दी में होने के कारण हिन्दी की प्रथमावस्था में भी जैन दर्शन के सिद्धान्तों पर रचनाएँ हुई। अतएव हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक रूप का सूत्रपात करने में जैन दर्शन का महत्त्व है।

श्रृंगार के साथ वीर का मिश्रण यदि पश्चिम के कथा–काव्यों में है तो श्रृंगार के साथ भक्ति का मिश्रण है पूर्व के विद्यापति के पदों में। वह शिव के भक्त थे, लेकिन उन्होंने प्रेम गीत और भक्ति वैष्णव गीत भी लिखे। विद्यापति में वैष्णव की मर्यादा और शैव का तादात्म्य भाव दोनों एक साथ मिलते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि निम्बार्क द्वारा प्रतिपादित द्वैताद्वैत सि़द्धान्त के अनुरूप रागानुगाभक्ति का दर्शन इनके पदों में होता है। डॉ जनार्दन मिश्र ने विद्यापति की पदावली को आध्यात्मिक विचार तथा दार्शनिक गूढ रहस्यों से परिपूर्ण माना है, वहीं डॉ श्यामसुन्दर दास के अनुसार हिन्दी के 'वैष्णव साहित्य' के प्रथम कवि मैथिल कोकिल विद्यापति हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शहिंदी साहित्य का आदिकालश में लिखा है, कीर्तिलता के कवि ने पाठक को कुछ पुण्यलाभ का प्रलोभन

दिया था–श्पुरुष कहाणी हाँ कहाँ जसु पत्थावै पुन्नु।ष (पृ० १२) एवं श्पदावलीश में तो ऐसा जान पड़ता है कि विद्यापति प्रेमी–प्रेमिकाओं मात्र को कृष्ण–राधा के रूप में परिकल्पित करते हैं। जहाँ सच्चा प्रेम है वहाँ राधा और कृष्ण ही आश्रय आलंबन हैं, ऐसा उनका मानना लगता है और राधा–माधव का यह रूप अपने में आराध्य है।" विद्यापति के पदों में तन्मयता की गहरी अनुभूति ही उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर रूपांतरित कर देती है। इसीलिए चिर–परिचित होते हुए भी वे चिर–नवीन हैं, मिलते–जुलते शारीरिक अनुभवों की अलग–अलग पदों में आवृत्ति होने पर भी अपने तन्मयता भाव से वे सभी विशिष्ट हो उठते हैं।

सिद्धों–नाथों के युग से निकल कर हिंदी संतों में साहित्य का प्रथम उन्मीलन उत्तर में दिखाई देता है, जिसका प्रतिरूप दकनी में पुरानी खड़ी बोली का सूफी साहित्य है। दिल्ली–मेरठ की खड़ी बोली का प्रयोग अमीर खुसरो कर रहे हैं, अमीर खुसरों ने जिन सूफी विचारों को दिशा दी वह भारतीय अद्वैतवाद से मिलकर अधिक सुग्राह्य हो जाता है। खुसरों के काव्य ने विपरीत प्रकार के धर्मों हिंदू और इस्लाम के समन्वय का प्रयत्न किया, न केवल अपनी हिंदी कविता में जो अपेक्षाकृत कम मिलती है वरन् अपने फारसी काव्य में भी जो प्रभूत परिमाण में सुलभ है। हिन्दी साहित्य में अमीर खुसरो के साथ जायसी और बुल्ले शाह जैसे कवियों की रचनाएँ सूफी–दर्शन से प्रेरित हैं। मलिक मोहम्मद जायसी की ष्पद्मावतष और संत रैदास के भजन सूफी प्रेम और भक्ति की उच्चतम अभिव्यक्ति हैं।

मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा लिखितश पद्मावतश प्रेमाख्यानक परम्परा का सबसे प्रसिद्ध एवं सबसे महत्वपूर्ण महाकाव्य है। पद्मावत मूल रूप से रोमांचक शैली का कथाकाव्य है, इस काव्य में प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, दर्शन, अध्यात्म, मौलिकता, रहस्यात्मकता और भारतीय संस्कृति का समग्र रूप देखने को मिलता है। पद्मावत के विभिन्न पात्र दार्शनिक तत्वों के प्रतीक हैं। भारतीय निर्गुण साधना के संतों ने पात्रों और घटनाओं के लिए जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है, जायसी के ये प्रतीक वैसे ही हैं। यहाँ साधक का मन 'रत्नसेन' है, उसका शरीर यानी सुख–विलास 'चित्तौर' है। इस सुख भोग रूपी चित्तौर को त्यागने के बाद गुरू अर्थात् 'हीरामन सुग्गा' के निर्देश से सात्विक ज्ञान 'पद्मावती' उपलब्ध होता है जिससे अन्ततः वह मोक्ष को प्राप्त करता है। डॉ। गणपतिचन्द्र गुप्त ने इसे "भारतीय मोक्ष साधना का ही व्यंजक" सिद्ध किया।

जिस प्रकार श्महाभारतश की विशालता को लेकर प्रसिद्ध है कि
"यदिहास्ति तद् अन्यत्र। यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।"

उसी भाँति पृथ्वीराज रासो के रचयिता भी इसकी विराट्ता को लेकर आश्वस्त हैं। रासो में एक छंद है–

"उक्ति धर्म विशालाय राजनीति एवं रस। षट् भाषा पुराणं च, कुरानं कथितं मया"

अर्थात् इसमें राजनीति के साथ धर्म विषयक उक्तियाँ, नवरस, छह भाषाएँ, पुराण–कुरान आदि सभी समाहित हैं।

पृथ्वीराज रासो इस अर्थ में भी हिंदी का विलक्षण महाकाव्य है कि इसका रचयिता स्वयं रासो की कथा का एक पात्र भी है। इस प्रकार पृथ्वीराज रासो भी अपनी रचनाशीलता में अद्वैत के दर्शन की एक सूक्ष्म व्याख्या है।

भक्तिकाल में दो काव्यधाराएँ थीं– निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा और फिर इन दोनों काव्यधाराओं के भी दो–दो काव्यधाराएं थी अर्थात् निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी तथा सगुण भक्तिधारा की रामकाव्य और कृष्णकाव्य। इन सभी काव्यधाराओं के प्रेरणा–स्रोत मूल रूप से दो थे– एक, बाह्य प्रेरणा–स्रोत और दूसरे, अंतः प्रेरणा–स्रोत द्य बाह्य प्रेरणा–स्रोत में तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ थीं। जिनकी वजह से भक्ति साहित्य की सर्जना हो रही थी। दूसरी ओर भारतीय धर्म साधना (दर्शन) की जो एक लंबी परंपरा चली आ रही थी, उससे भी प्रेरित होकर भक्तिकालीन कवि रचनात्मक कर्म कर रहे थे। जिसके अंतर्गत अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत इत्यादि न जाने कितने दार्शनिक मत थे, जो भक्तिकालीन कवियों को स्वीकार एवं इनकार के रूप में प्रभावित कर रहे थे। द्वैतवादी दर्शन ने जगत् की अस्मिता को प्रतिपादित तो जरूर किया किन्तु जीवन का धरातल पाकर जीवन हस्तगत हुआ। लौकिकता का आधार पाकर दर्शन का भी लौकीकरण होने लगा। रामकाव्य को पाकर विशिष्टाद्वैत दर्शन सम्पूर्ण जीवन का ही सूक्ष्मदर्शी बना। ईश्वरत्व को मनुष्यता में पहचाना तो मनुष्यता को ईश्वरत्व तक की सम्भाव्य ऊँचाई दी। कृष्णकाव्य ने तो शुद्धता के बहाने से दर्शन का पूर्णतः लौकिकीकरण किया। शंकराचार्य ने ब्रह्म, ईश्वर, जीव, जगत के सम्बन्धों पर नये सिरे से चिन्तन करके अपने अद्वैतवादी सिद्धान्त की स्थापना की। परन्तु बाद के आचार्य उनके अद्वैतवाद

से सहमत नहीं हुए। इसलिए उन्होंने शंकर के विरोध में अपने नये–नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये। ये सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत तथा शुद्धाद्वैत थे, जो क्रमशः रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य तथा बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित किये गये। इन सिद्धान्तों में भक्ति का दार्शनिक विवेचन मौजूद था, इसलिए ये ही सिद्धान्त भक्ति के दार्शनिक आधार बने।

शंकराचार्य के अनुसार माया से मुक्ति ज्ञान के द्वारा मिलती है। ज्ञान के अभाव में ही जीव माया में फँसे रहने के कारण ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पाता। कबीर एवं रैदास जैसे अन्य निर्गुण कवि भी इसी अद्वैतवादी दर्शन तत्व को अपने साहित्य का आधार बनाकर ज्ञान के महत्व को स्वीकारते हैं।

रामानुज, जिनका समय ग्यारहवीं शताब्दी है। वे विशिष्टाद्वैतवादी है, अर्थात वे यद्यपि अद्वैत में यकीन करते हैं, परन्तु उनका अद्वैत विशिष्ट प्रकार का है, जिसमें जीव और जगत् दोनों ब्रह्म से भिन्न और सत्य हैं; लेकिन ब्रह्म से स्वतन्त्र नहीं हैं। इनका दर्शन ब्रह्म को निर्गुण, निर्विशेष नहीं मानकर सगुण, सविशेष मानते हैं और हिंदी साहित्य की रामकाव्य धारा में भक्तिपरक रचनाओं में विशिष्टाद्वैतवाद का स्पष्ट प्रभाव पड़ा।

निम्बार्क ने भी शंकर से भिन्न अपने द्वैताद्वैतवाद या भेदाभेदवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। निम्बार्क ने राधा–कृष्ण की युगल मूर्ति की आराधना को भक्ति का अभीष्ट माना है। जिसका मुख्य प्रभाव अष्टछाप एवं कृष्णकाव्य के प्रमुख भक्त कवियों पर देखा जा सकता है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित दर्शन शुद्धाद्वैतवाद ने पुष्टिमार्ग सिद्धान्त को भक्ति में ढाला। बल्लभाचार्य के अनुसार श्रीकृष्ण परब्रह्म, रसरूप हैं। धर्म–स्थापना के लिए वे अवतरित होते हैं और उनकी प्राप्ति भक्ति के द्वारा हो सकती है। यह सिद्धांत कृष्णभक्त कवियों के धार्मिक एवं साहित्यिक क्रियाकलापों में प्रमुख रूप से सामने आता है।

इस विवेचन से भक्ति साहित्य के जिन दार्शनिक आधारों का ज्ञान होता है, सभी दार्शनिक सगुण भक्ति के पक्षधर रहे हैं; जबकि निर्गुण भक्ति के पक्षधर दार्शनिक भी हुए हैं, यह निर्विवाद है कि भक्ति आन्दोलन केवल धार्मिक आन्दोलन नहीं था, बल्कि एक अखिल भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन भी था। भारतीय दर्शन परम्परा में हर विचारधारा किसी न किसी प्रमाण को लेकर चली है। वैदिक परम्परा में वेदों को अन्तिम प्रमाण माना गया है। नारद एवं शांडिल्य के भक्ति सूत्रों में भक्ति को स्वयं प्रमाण माना गया है। लेकिन निर्गुण भक्ति में इन सबसे अलग हटकर प्रमाण की अवधारणा मान्य है। निर्गुण संत शास्त्रीय प्रमाण या शब्द प्रमाण के बजाय लोक के व्यापक अनुभव को प्रमाण मानते हैं। वे जीवन के अनुभव और उस अनुभव से पाए सत्य को शास्त्र और उसके सत्य से अधिक प्रामाणिक मानते हैं। इसलिए कबीर कहते हैं कि–

'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन देखी।'

निर्गुण भक्ति का एक मजबूत आधार सूफी सिद्धान्त भी है। सूफी सिद्धान्त इस्लाम की शाखा होने के बावजूद, इस्लाम के एकेश्वरवाद की तुलना में अद्वैतवाद के ज्यादा करीब है। सूफी मत में माया तथा गुरु आदि का प्रवेश भी भारतीय प्रभाव के कारण ही हुआ है।

कबीर के पद में सूफी एकेश्वर वाद और भारतीय अद्वैतवाद के 'गुरुसत्ता' का महत्व है । कबीर कहते हैं–

"साहिब मेरा एक है, दूजा कहा न जाये दूजा साहिब जो कहूँ, साहिब खड़ा रसाई।"

मेरा साहिब तो एक ही है। अगर मैं कह भी दूँ कि मेरा एक और साहिब भी है, तो भी वही साहिब अपनी लीला रच रहा है।

इस प्रकार से यदि भक्तिकाल में ईश्वर की नर–लीला का चित्रण है, तो रीतिकाल में कवि ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण करता है। रीतिकाल में कविता अधिकांशतः धर्म से विलग होकर ऐहिक रूप में विकसित होती है। रीतिकालीन कवि के लिए धर्म और दर्शन की प्रेरणा सार्थक नहीं रह गई। और एक माने में इस युग में जीवन और सौंदर्य को दार्शनिक दृष्टि से देखा गया।

विदेशी शासन के पूर्व, हिंदी चिंता–धारा के एकदम आरंभ में अद्वैत–चिंतन की प्रमुखता थी। जो सिद्धों–नाथों की बानियों में सहज दृष्टव्य है। प्रायः एक सहस्र वर्षों की पराधीनता के लंबे क्रम के बाद उन्नीसवीं शती के पुनर्जागरण में अद्वैतवादी चिंतन पुनः केन्द्रीय रूप में स्थापित होता है, जिसका प्रतिफलन किंचित भारतेंदु के जागरण काव्य में वैष्णव दर्शन से लेकर प्रसाद–निराला तक के काव्य में देखा जा सकता है। आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में मैथिलीशरण गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रा नन्दन

पन्त, महादेवी वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, 'अज्ञेय', यशपाल, रांगेय राघव, मोहन राकेश, आदि की रचनायें बौद्धदर्शन से प्रत्यक्षतः सम्बन्ध रखती हैं।

बौद्ध धर्म से सम्बंधित प्रारम्भिक रचनाओं में गुप्त जी की 'यशोधरा' एक प्रमुख कृति है जो बुद्ध की पत्नी यशोधरा के नारी मन की सविस्तार करुण–गाथा है। आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने एडविन आर्नाल्ड कृत 'द लाईट आफ एशिया' का अनुवाद 'बुद्धचरित' नाम से किया है जो मूलतः बुद्ध के जीवन की एक रूप–रेखा प्रस्तुत करती है। छायावादी चिन्तनधारा के प्रमुख स्तंभ जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित नाटक– राजश्री, विशाखा, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त तथा सम्राट कनिष्क के घटनाक्रम उन सम्राटों से सम्बंधित है जिन्होंने बौद्ध धर्म को राज्याश्रय दिया। इनके साहित्य में बौद्ध धर्म के सिद्धान्त यत्र–तत्र मिलते हैं। व्यक्ति निर्वाण की अपेक्षा समष्टि हित पर अधिक बल देकर प्रसाद ने महायान परम्परा के दर्शन को अपनाया है। इनकी महाकाव्यात्मक कृति 'कामायनी' में संसार के संघर्षों से विरक्त होकर संसार त्याग का उपदेश न देकर निष्काम भाव से कर्मरत रहने की प्रेरणा, प्रत्यभिज्ञा दर्शन का स्पष्ट उदाहरण है। महादेवी वर्मा की रचनाओं में बौद्ध धर्म के दुखवाद और करुणा के सिद्धान्त का प्रभाव स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। इसी तरह छायावाद के एक अन्य स्तंभ निराला की रचनाओं में वेदांत और रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद के दर्शन का प्रभाव रहा है, साथ ही उनकी रचनाओं में बौद्ध धर्म के पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग दिखता है।

सुमित्रानन्दन पन्त कि रचनाएँ श्स्वर्णकिरणश, श्स्वर्णधूलिश, श्उत्तराश, श्अतिमाश, श्रजतशिखरश, शशिल्पीश, श्सौवर्णश, श्वाणीश और शकिरण–वीणाश अरविन्द दर्शन से प्रभावित हैं। अपने विपुल वांग्मय में 'बुद्ध के प्रति' एक छोटी कविता लिखकर अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। सृजन के विलक्षण प्रतिभा वाले हजारी प्रसाद द्विवेदी के दो उपन्यासों, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चंद्रलेखा' की कथा–वस्तु बौद्ध धर्म के तांत्रिक रूप से सम्बंधित है। बाणभट्ट की आत्मकथा के अंतिम भाग में द्विवेदी जी ने बौद्ध आचार्य सुगतभद्र के वार्तालाप के माध्यम से तत्कालीन बौद्ध धर्म का तंत्रोन्नमुखी रूप दिखलाया है। चारू चंद्रलेख की कथा–वस्तु का काल 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के परवर्ती युग का है जब बौद्ध धर्म का तांत्रिक संप्रदाय चर्मोत्कर्ष पर था, जो इस उपन्यास की कथा–वस्तु का एक बडा भाग है। 'भदन्त अमोघवज्ज' के माध्यम से द्विवेदी जी ने बौद्ध–दर्शन के महायान संप्रदाय की प्रासंगिकता को उजागर किया है जिसमें व्यक्तिगत मुक्ति की जगह समष्टि के चित्त के परिष्कार की श्रेष्ठता स्थापित की गयी है।

अज्ञेय की रचनाओं 'असाध्य वीणा' और 'आंगन के पार द्वार' पर बौद्ध–दर्शन का स्पष्ट प्रभाव है। इन्होंने उत्तरप्रियदर्शी नामक एक काव्य नाटक की रचना भी की है जो अशोक के कलिंग विजय के बाद के घटना क्रमों पर आधारित है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने दो उपन्यासों 'सिंह सेनापति' तथा 'जय यौधेय' की कथा–वस्तु में बौद्ध–मतों का साम्यवादी विचारधारा के साथ समन्वय किया है। 'जय यौधेय', जो गुप्तकाल की घटनाओं पर आधारित है, में अनित्यवाद और अनात्मवाद आदि बौद्ध–सिद्धान्तों की पुष्टि की गयी है। ऐतिहासिक उपन्यासकार चतुरसेन शास्त्री की रचना 'बोधिवृक्ष की छाया में बौद्ध धर्म के तीन शलाकापुरुष बुद्ध, अशोक और हर्षवर्धन के जीवन–वृत को प्रस्तुत करती है। वैशाली की नगरवधु' इनकी एक अन्य रचना है जिसका कथानक बौद्ध कालीन राजनर्तकी आम्रपाली पर आधारित है। यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' की कथा–वस्तु हर्षवर्धन काल से सम्बन्धित है। 'अमिता' यशपाल का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है जो अशोक के कलिंग विजय पर आधरित है। मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' का कथानक बुद्ध के जीवनकाल से सम्बंधित है। नन्द और सुन्दरी के वार्तालापों पर बौद्ध दर्शन का परोक्ष प्रभाव है। प्रगतिशील कथा–साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ रांगेय राघव ने अपने दो ऐतिहासिक उपन्यासों में बौद्धकालीन घटनाओं को अपनी कथा के विषय बनाया है। 'यशोधरा जीत गई' में रांगेय राघव ने बुद्ध और यशोधरा को माध्यम बनाते हुए नारी जीवन धर्म को तत्कालीन परिस्थितियों का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विवेचन किया है। अपने एक अन्य उपन्यास 'चीवर' में रांगेय राघव ने सम्राट हर्षवर्धन और उनकी बहन राज्यश्री की कथा के माध्यम से उस समय के राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर बौद्ध धर्म के प्रभाव को दर्शाया है। समकालीन हिन्दी साहित्य पर भी दर्शन का प्रभाव दिख रहा है। हाल में ही प्रकाशित कवि केदारनाथ सिंह के काव्य संकलन 'टॉलस्टाय व साइकिल' की कविता में मुख्यतः बौद्ध दर्शन उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष

हिंदी साहित्य का भारतीय दर्शन से साक्षात्कार सर्वप्रथम अपभ्रंश रचनाओं में होता है, तत्पश्चात लगभग चौदह

सौ वर्षों की वृहद अवधि में हिंदी साहित्य की अनेकों विधाओं में भारतीय दर्शन परंपरा का प्रभाव गहरा होता चला गया है। विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं, अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, जैन दर्शन, सूफी मत, और बौद्ध दर्शन ने साहित्यिक कृतियों को प्रभावित किया है। मध्यकालीन साहित्य में संत काव्य, भक्ति आंदोलन और रीति साहित्य ने दर्शन को आत्मसात किया। जन–जन के बीच, गूढ़ दार्शनिक तत्वों को संत कवियों, कबीर और रैदास की वाणियों एवं तुलसी, रहीम आदि की लेखनी में बड़ी सरलता से पिरोकर, पहुंचाया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में भी दर्शन की अनुगूँज सुनाई देती है। जयशंकर प्रसाद, निराला, हजारी प्रसाद द्विवेदी और अज्ञेय की रचनाएँ वेदांत, बौद्ध दर्शन, और समाजवादी विचारों से प्रभावित रहीं।

कुल मिलाकर, हिंदी साहित्य और भारतीय दर्शन का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। आज भी साहित्य में दर्शन के माध्यम से जीवन, सत्य, आत्मा, और सामाजिक संरचना के गूढ़ प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास निरंतर जारी है।

Author's Declaration:

The views and contents expressed in this research article are solely those of the author(s). The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible for any errors, ethical misconduct, copyright infringement, defamation, or any legal consequences arising from the content. All legal and moral responsibilities lie solely with the author(s).

संदर्भ सूची

१. शुक्ल रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, आठवां संस्करण, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–२११००१, लोक भारती प्रकाशन, २०१२

२. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अडतालीसवां संस्करण, ए–६५, सेक्टर–५, नौएडा–२०१३०१, मयूर पेपरबैक्स, २०१५

३. राघव रांगेय, गोरखनाथ और उनका युग, प्रथम संस्करण, ई–१७, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली–११००३२, अनन्य प्रकाशन, २०२४

४. दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय,तीसवाँ संस्करण, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–२११००१, लोक भारती प्रकाशन, २०२४

५. चतुर्वेदी रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–२११००१, लोक भारती प्रकाशन,२०१८

६. वर्मा सरोज कुमार, दर्शन के संदर्भ, प्रथम संस्करण, १/१०२०६, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली–११००३२, अनुज्ञा बुक्स, २०२२

Cite this Article-

'डॉ0 भास्कर मिश्र', 'हिंदी साहित्य पर दर्शन का प्रभाव', Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal (RVIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:2, Issue:06, June 2025.

Journal URL- https://www.researchvidyapith.com/

DOI- 10.70650/rvimj.2025v2i600011

Published Date- 07 June 2025